International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1114-1116

कत्यूरी युगीन शिल्पकार व उनकी सामाजिक दशा

संदीप कुमार
शोधार्थी इतिहास, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखंड, भारत।

प्रस्तावना

इतिहासकार पं0 बद्रीदत दत्त पाण्डें उत्तराखंड में कत्यूरी शासनकाल कों ईसा से 2500 वर्ष पूर्व से 700 ई0 तक मानतें है।[1]कीलहार्न द्वारा दानपत्रों में अंकित तिथियों की गणना के आधार पर निर्म्बत, इष्टगणदेव, ललितसूरदेव और भूदेव के राज्यकाल को 790 ई0 से लेकर 870 ई0 के बीच का माना है।[2]

इस राजवंश को कंथापुरी भी कहतें है जागर गीतों में इसका उल्लेख कंथापुरी के रूप में हुआ है।[3] यह मूलतः सुग्दी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है, शक या खसों का प्राधान्य नगर।[4]

लोकगाथाओं में कत्यूरियों की सं0 नौ लाख है। अतः इनका राजनैतिक व सामाजिक संगठन कबीलाई गणतंत्रात्मक था। उत्राखण्ड में उस काल में ऐसा प्रबल व सांख्यिकीय बल केवल कुणिन्दों का ही था। अतः सभी उत्तराखंड के इतिहासकार इस बात पर सहमति व्यक्त करतें है कि कुणिन्द ही कत्यूरियों के पूर्ववर्ती व अग्रज थे।[5]

प्रायः 700 ई0 से लेकर आगे प्रायः तीन शतियों तक कार्तिकेयपुर राजवंश ने मध्य हिमालय में प्रथम बार राजनीतिक एकता स्थापित की। मध्य हिमालय का यह प्रथम ऐतिहासिक राजवंश है।[6]कार्तिकेयपुर राजवंश की राजधानी जोशीमठ थी। कुणिन्दों का यह जनपद गुप्त काल में कर्त्ति नाम से अस्तित्व में था।[7] पं0 बदरीदत्त पांडें के अनुसार बैजनाथ गॉव के पास करवीपुर था, वहीं कत्यूरियों राजा ने अपनी नयी राजधानी की स्थापना की वहॉ नौलें तालाब, हाट आदि बनायें।[8]

कुमाऊॅनी लोकगीतों में वह कत्यूरी राज वंशावली इस प्रकार दी गयी है–[9]

पछम खली में को को राजा बसनी?
बूढा राजा सासन्दी को पाट।
गोरा को पाट, सांवला को पाट।
नीली चौरी, उझान को पाट।
मानचवाणी को घट लगयों।
दौराहाट में दौरमंडल चिणों।
खिमसारी हाट में खेल लगयों।
रणचुलीहाट में राज रमायो आसन्दी।
आसन्दी को बासन्ती।
अजोपीथा गजोपीथा, नरपीथा, पृथीरंजन, पृथिवीपाल।

कत्यूरी कालीन अभिलेखों की सं0 नौ है–

1. त्रिभुवनराजदेव का बागेश्वर अभिलेख
2. ललितसूरदेव का पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्राभिलेख
3. ललितसूरदेव का पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्राभिलेख
4. ललितसूरदेव का कण्डारा अभिलेख
5. भूदेव का बागेश्वर शिलालेख
6. देशटदेव का बालेश्वर अभिलेख
7. पदम्टदेव का पादुकेश्वर अभिलेख
8. सुभिक्षराजदेव का पाण्डुकेश्वर अभिलेख
9. बैजनाथ के तीन शिलालेख

कत्यूरी काल को यमुनादत्त वैष्णव जी कुमाऊॅ का स्वर्ण युग कहते है। पर क्या यह वास्तव में स्वर्णयुग कहा जा सकता है। कत्यूरी काल में शिल्पकारों के सामाजिक विभाजन से तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर क्या इसे स्वर्ण युग कहा जाऐगा?

कत्यूरी काल में शिल्पकारों का प्रमुख स्थान था, ये तीन वर्गो में विभक्त थें।

अ– हस्त शिल्पी वर्ग
ब– वादक– नर्तकी वर्ग
स–ग्राम– सेवक वर्ग

प्रथम वर्ग

प्रत्येक गॉव में सभी वर्ग के लोग रहते थें जिनका निवास स्थान अलग–2 होता था। जिनका आपस में खानें पीने तथा शादी–विवाह में छुआ–छूत प्रचलित थी। ब्राहम्णों, क्षत्रियों, खसों व शिल्पकारों में ऊॅच–नीच का प्रभाव था। ओढ मिस्त्री का काम वस्तु शिल्प मंदिर, भवनों, प्रासादों, नौलों एवं दवे प्रतिमाओं का निर्माण करते थे। इन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। चिमियार का कार्य काष्ठ –बर्तन, बक्सें, ओखली, आदि का निर्माण था।[10]

कोली तेल निकालने कार्य करतें थें तथा कपडें बुनने का कार्य करते थें। छिपी वर्ग का कार्य कपडें को रंगनें तथा छपाई का कार्य करना होता था। इनकी तुलना स्थानीय रंगरेज से की जा सकती है। भूल अगली अनुसूचित जाति थी जिनका कार्य तिल, सरसों, राई, भांग, भंगजीरा, डोलू से तेल निकालना था। अगरिया, धनौरिया, खतौनिया, लोहार, तिरूवा आदि लोहे के विभिन्न उत्पादों का निर्माण एवं खनन करते थे।

टम्टा तॉबें के बर्तन तथा वाद्ययंत्र बनाते थें तथा ताम्रमूर्तियों का निर्माण करते थें।[11]

- धोणी/धुनेर जाति के लोग प्रमुख नदियों से सोने छॉटने का कार्य करते थे। सुनार एक अनुसूचित जाति थी जो स्वर्ण, चॉदी एवं लौह के बारीक आभूषण बनाते थें। तथा ताम्रपत्र, लौह शलाकों एवं पाषाण लेंख लिखने का कार्य करते थे।

रूढिया शिल्पकार सोल्टी, कण्डी डलिया टोकरी चटाई एवं कोण्डें (अनाज रखने के बडें बर्तन बनानें का कार्य करते थें बांस के उत्पादों का निर्माण बैडी जाति के लोग करते थे।[12] हणकिया उत्तराखंड के कुम्हार है जो मिट्टी के घडें, दीपक, हाण्डी, बतख (पानी हेतु) हिंसरा (चबेना घुनने की कढाई) आदि बनाते थें।[13]

द्वितीय वर्ग

बेडा–वादी जाति का कार्य कलाबाजी, पटाबाजी नृत्य,स्वांग, हास–परिहास नाटक करना था। उत्तराखंड मे ये संगीत के जन्मजात उपासक, लोककवि व नर्तक है।[14]

दास (औजी) यहॉ के ढोल सागर के ज्ञाता थें, जो विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं अन्य मांगलिक अवसरों पर ढोल–नगाडें तथा तुरही का प्रयोंग किया जाता था। इन दासों को विरूदावली एवं राजवली मौखिक याद रहती थी। कत्यूरी काल में युद्व में भी सैनिकों के जोश भरनें के लिए ढोल–नगाडें तथा तुरही का प्रयोग किया जाता था।[15]

कत्यूरी राजाओं की वंशावली का वर्णन ढोल बजाने वाले खेकदास द्वारा इस प्रकार वर्णित किया गया है–

राजा असन्ती वासन्ती
गोरा, सावोला, ईलण, तिलण
बडा राजा पीथोरा, प्रीथमदेव
सूरीज तपनी का राजा धामदेव

भूतांगी देवता (कव्वा) इस वर्ग के थें। कत्यूरी जागरों में भिकुवा पौहरी (प्रहरी) इसी वर्ग से थे। जागर में ढोल बजानें वाला गुरू द्वारा (आटव ढोल बजानें का डंडा), चावल, भभूत प्रसाद रूप में ग्रहण करते थे।

डॉ0 मदन भट्ट के अनुसार – दासों के प्रथम गुरू रामदास थे।[16]

प्राचीन समय में इनके निवास स्थान को डुमौडा या डूमटाव कहा जाता था।[17]

तृतीय वर्ग में ग्राम– सेवक वर्ग के लोग आते थे।

कत्यूरीकालीन पौरववर्मन के तामेश्वर अभिलेख के अनुसार शिल्पकारों के निवास स्थल–

बर्द्धपल्लिका[18] – बढई
चंदुलाक पल्लिका – नाई
विशाखिल पल्लिका[19] – जौहरी
देकुलिक – मन्दिर बनाने वाले शिल्पी
रजकस्थल[20] – धोबी
पट्टवायक – रेशम के बुनकर
डिडिंक पल्लिका – बाजा बजाने वाले दासों का सन्निवास[21]

हरिकृष्ण रतूडी ने निम्न शिल्पकार जातियों का उल्लेख किया है।[22]

प्रथम वर्ग (हस्त– शिल्पी वर्ग)

तालिका 1

शिल्पकार वर्ग	व उनके कार्य
ओढ मिस्त्री	वास्तुशिल्पी, भवन निर्माण कार्य में पारंगत
चिमियार	काष्ठ उत्पादन व निर्माण कला से संबधित
कोल	तेल निकालना व कपडें बुनने का कार्य करना आदि
छिपी	वस्त्रों की रंगाई व छपाई का कार्य
भूल	तेल निकालना
अगरिया	लोहा व तॉबें की खुदाई
धनौरिया	साफ धून से डले निकालने का कार्य
खतौनिया	डले से संबधित उपकरण बनाना
लोहार	आफर (लौहशाला में उपकरण बनाना)
टमटा	तॉबें से भाण्डें, देव प्रतिमाऐं, वाद्य यंत्र व सिक्कें बनाना
रूढिया	रिंगाल से बने उत्पाद
बैडी	बॉस से उत्पाद

द्वितीय वर्ग (वादक नर्तक वर्ग)

तालिका 2

बैडीवादी	कलाबाजी, हास–परिहास
औजी या दास	कपडें सिलना या देवता की स्तुति
हुडकिया	देवता की स्तुति व गान इत्यादि
भाट व राई	उत्तराखंड की वीरगाथा व विरूदवलियों व वंशावलियों का गीत–नाटक के माध्यम से वर्णन
मिरासी ढाकी	देवनृत्य, आवाहान, धार्मिक गायन
अठपहरिया	राजमहल में नौबत बजाना, वीर रस वाले वाद्ययंत्र रणसिंह आदि को बजाना

तृतीय वर्ग (ग्राम–सेवक वर्ग)

ये निम्न स्तर के शिल्पकार थे, ये अपने आश्रयदाता व ग्रामीणों की सेवा करते थे।

तालिका 3

हलिया	खेत जोतना, गुढाई, निराई व पशुओं की देखभाल
प्रहरी	चौकीदार व सूचनाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेषण करना
वागुडी	ये शिकार में राजा की सहायता करते थे।
बाडें	पशु–पक्षियों की देख–रेख करना व धार्मिक कार्यो के लिए पशुओं की व्यवस्था करना
झूलिया	ग्रामीण मनोरंजन हेतु विभिन्न गतिविधियों का संचालन करना।
बखरिया	ये राजाओं के घोडें व युद्ध में जानने वाले अन्य पशुओं की देखभाल करते थे।
नगरबी या पुम्पी	ये मृतजीवी से पशुओं की खाल व उससे चर्म वाद्ययंत्रों की पूड थैलें बनाने का कार्य करते थे।
पतर	ये शादी–विवाह में पत्ते लानें व फैकने का कार्य करते थे।

निम्न जाति के साथ विवाह करने पर जातिच्यूत कर दिया जाता था। ब्राहमण पुरूष यदि निम्न वर्ग की कन्या के साथ विवाह कर ले तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाता था। बागेश्वर के दास हीरा का विवाह इसका उदाहरण था।[23]

गढवाल और कुमाऊॅ के अधिकांश क्षेत्रों में कपड़ा एवं रस्सी प्राप्त करने के लिए भांग के रेशों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता था। जिसें भंगोला कहा जाता था।हरिजनों की उपजाति कोली कोली बुनने का कार्य करती थी।[24]

प्रसिद्ध इतिहासकार बद्रीदत्त पाण्डें कहते है कि कत्यूरी राजा ने अपनी मामी से विवाह किया उसके राज्य में डोली उठानें वालें के कन्धो में कीलें गाढ दी जाती थी ताकि डोली पहाड के ऊॅचे–नीचें रास्तों पर अभिजन वर्ग के लोगों को किसी प्रकार का कष्ट ना हो सके।[25]

कत्यूरी राजवंश के अत्याचारों की कहानी आज भी कत्यूर घाटी में गूंजती है। राजा ब्रहमदेव (विरम देव) के विषय में एक गीत है–

जै विरमा ज्यू को आल बांकों ढाल बांको, तुमरी कमाण बांको
आसन बांको, सिंहासन बांकों, नवाण को सेरो बांकों।
राजा बिरमा लखनपुर रौनी, जै बिरमा को घट बौया छौ।
सुलटी नाई लै लोनी पेंचा उलटी नाई लै दीनी
सात खवा बतूनी, चालनैल चाई लिनी
माल तली सौकाण मली की दसौत उधूनी

गरम पांखी चौसिंगिया लाखा भोटियालु कामला लिनी
अचारि करनी, बिबी ढकूनी तरूणि तिरिया हिटण नि दिना
वरूणि बाकरि चरण नी दिना।

(ब्रहमदेव की जय। उनकी आन टेढी है, उनकी ढाल टेढी है, आसन टेढा है सिंहासन भी विचित्र है। वे स्वयं कत्यूर छोडकर लाखनपुर में रहते है। उनका खेती का ढंग भी विचित्र है। वे अन्न उधार लेते है तो सीधी नाली से लेते है और जब यह वापस करते और फिर भी छलनी से छान लेते है वे नीचे तराई भावर से लेकर भावर ऊपर सौक्याण देश से दंशाश वसूल करते है। भोटियों से गरम पंखी, चार सींग वाला बकरा और कंबल लेते है। वे अत्याचार करते है और जुल्म ढाते है। युवती कन्या को मार्ग पर चलने नही देतें तथा सुन्दर बकरी को चरने नही देतें।)[26]

तृतीय वर्ग के शिल्पकारों की स्थिति तो अत्यंत दयनीय थी। दास शिल्पकारों में भी उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के हाथ से बना भोजन ग्रहण नही करते थे।[27]

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह तो स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीक समाज में वर्ग विभाजन तो था ही साथ ही शिल्प विशेष के आधार पर व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति का भी निर्धारण होता था। उनके पृथक निवास स्थान उनके सामाजिक विभाजन मे निम्न स्तर को भी प्रदर्शित करते है। कत्यूरी काल शिल्पकला, या अन्य मामलों में तो स्वर्णयुग हो सकता है, पर दलित अभिजनवर्ग की स्थिति स्वर्णयुग की परिकल्पना को कही नही छू सकती व सदियों से प्रताडित था ओर उस युग में भी प्रताडना का दंश अपनी आत्मा मे लियें हुए था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाण्डे, बद्रीदत्त, कुमाऊॅ का इतिहास, अल्मोडा बुक डिपो, 2016 पृ0– 183
2. सरकार, दिनेश चंद्र, सम एशिएंट किंग्स आफ कुमाऊॅ एण्ड गढवाल, खंड–12, 1951, पृ0–149
3. मठपाल, यशोधर; पुरवासी पत्रिका; अंक–13, पृ0– 41
4. कठौच, यशवंत सिंह, उत्तराखंड का नवीन इतिहास, 2010, बिन्सर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, 106
5. राना, राजेन्द्र सिंह, यमुना उत्पयका, यमुनोत्री, पृ0– 108
6. कठौच, यशवंत सिंह, उत्तराखंड का नवीन इतिहास, 2010, बिन्सर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, पृ0–4
7. कठौच, यशवंत सिंह, उत्तराखंड का नवीन इतिहास, 2010, बिन्सर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, पृ0–4–6
8. पाण्डे, बद्रीदत्त, कुमाऊॅ का इतिहास, अल्मोडा बुक डिपो, 2016 पृ0– 190
9. वैष्णव, यमुनादत्त, संस्कृति संगम उत्तरांचल, रंजन प्रकाशन, आगरा, 1976, पृ0– 69
10. रतूडी, हरिकृष्ण, गढवाल का इतिहास, बिनसर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, पृ0–90
11. लोहनी भाष्करानंद, कुमाऊॅ की जागर गाथाऐं, पृ0– 207
12. जोशी महेश्वर प्रसाद, मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातिया, अल्मोड़ा बुक डिपो, 2011 पृ0–92 पृ0– 17
13. टम्टा, सुरेश चंद्र टम्टा, वर्तमान अतीत– मध्य हिमालय का शिल्प, शिल्पकार एवं नृ–पुरातत्व, अल्मोडा बुक डिपों, 2011 पृ0– 47
14. पाण्डे, जोशी व पोखरियाः कुमाऊॅ हिमालय की परंपरागत प्रोद्योगिकी पृ0– 32
15. जोशी, महेश्वर प्रसाद, मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातिया, अल्मोड़ा बुक डिपो, 2011 पृ0–92 पृ0– 30
16. जोशी, महेश्वर प्रसाद, मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातिया, अल्मोड़ा बुक डिपो, 2011 पृ0–92 पृ0– 31
17. चातक गोविन्द, गढवाली भाषा और उसका साहित्य, पृ0– 140
18. डॉ0 निवेदिता, मध्य हिमालय का लोकधर्म, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2011 पृ0– 130
19. जोशी, महेश्वर प्रसाद, मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातिया, अल्मोड़ा बुक डिपो, 2011 पृ0–92 पृ0– 19
20. दुम्का एवं जोशी, घनश्याम, उत्तराखंड का इतिहास व संस्कृति, प्रकाश बुक डिपों, बरेली, 2006 पृ0– 65
21. आचार्य, लोहनी, भाष्करानंद, कुमाऊॅ की जागर गाथाऐं पृ0– 189
22. रतूडी, हरिकृष्ण, गढवाल का इतिहास, बिनसर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, 2007 पृ0–90
23. जोशी, महेश्वर प्रसाद, उत्तरांचल हिमालय के दास–शिल्पकार, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, 2006 पृ0– 15
24. जोशी, महेश्वर प्रसाद,मध्य हिमालय की अनुसूचित एवं पिछड़ी जातिया, अल्मोड़ा बुक डिपो, 2011 पृ0–92
25. पाण्डे, बद्रीदत्त, कुमाऊॅ का इतिहास, अल्मोडा बुक डिपो, 2016 पृ0– 212
26. वैष्णव, यमुनादत्त, संस्कृति संगम उत्तरांचल, रंजन प्रकाशन, आगरा, 1976, पृ0– 59
27. दनोसी, बी0 एल0, गढवाल के शिल्पकारों का इतिहास, विनसर पब्लिशिंग कंपनी, 2006 पृ0–88